Vol 6 Issue 11 August 2017

ISSN No : 2249-894X

Monthly Multidisciplinary Research Journal

Review Of Research Journal

Chief Editors

Ashok Yakkaldevi
A R Burla College, India

Ecaterina Patrascu
Spiru Haret University, Bucharest

Kamani Perera
Regional Centre For Strategic Studies,
Sri Lanka

Welcome to Review Of Research

RNI MAHMUL/2011/38595 **ISSN No.2249-894X**

Review Of Research Journal is a multidisciplinary research journal, published monthly in English, Hindi & Marathi Language. All research papers submitted to the journal will be double - blind peer reviewed referred by members of the editorial Board readers will include investigator in universities, research institutes government and industry with research interest in the general subjects.

Regional Editor

Dr. T. Manichander

Advisory Board

Kamani Perera
Regional Centre For Strategic Studies, Sri Lanka

Ecaterina Patrascu
Spiru Haret University, Bucharest

Fabricio Moraes de AlmeidaFederal
University of Rondonia, Brazil

Anna Maria Constantinovici
AL. I. Cuza University, Romania

Romona Mihaila
Spiru Haret University, Romania

Delia Serbescu
Spiru Haret University, Bucharest, Romania

Xiaohua Yang
University of San Francisco, San Francisco

Karina Xavier
Massachusetts Institute of Technology (MIT), USA

May Hongmei Gao
Kennesaw State University, USA

Marc Fetscherin
Rollins College, USA

Liu Chen
Beijing Foreign Studies University, China

Mabel Miao
Center for China and Globalization, China

Ruth Wolf
University Walla, Israel

Jie Hao
University of Sydney, Australia

Pei-Shan Kao Andrea
University of Essex, United Kingdom

Loredana Bosca
Spiru Haret University, Romania

Ilie Pintea
Spiru Haret University, Romania

Mahdi Moharrampour
Islamic Azad University buinzahra Branch, Qazvin, Iran

Titus Pop
PhD, Partium Christian University, Oradea,
Romania

J. K. VIJAYAKUMAR
King Abdullah University of Science & Technology,Saudi Arabia.

George - Calin SERITAN
Postdoctoral Researcher
Faculty of Philosophy and Socio-Political Sciences
Al. I. Cuza University, Iasi

REZA KAFIPOUR
Shiraz University of Medical Sciences
Shiraz, Iran

Rajendra Shendge
Director, B.C.U.D. Solapur University, Solapur

Awadhesh Kumar Shirotriya

Nimita Khanna
Director, Isara Institute of Management, New Delhi

Salve R. N.
Department of Sociology, Shivaji University, Kolhapur

P. Malyadri
Government Degree College, Tandur, A.P.

S. D. Sindkhedkar
PSGVP Mandal's Arts, Science and Commerce College, Shahada [M.S.]

Anurag Misra
DBS College, Kanpur

C. D. Balaji
Panimalar Engineering College, Chennai

Bhavana vivek patole
PhD, Elphinstone college mumbai-32

Awadhesh Kumar Shirotriya
Secretary, Play India Play (Trust),Meerut (U.P.)

Govind P. Shinde
Bharati Vidyapeeth School of Distance Education Center, Navi Mumbai

Sonal Singh
Vikram University, Ujjain

Jayashree Patil-Dake
MBA Department of Badruka College Commerce and Arts Post Graduate Centre (BCCAPGC),Kachiguda, Hyderabad

Maj. Dr. S. Bakhtiar Choudhary
Director,Hyderabad AP India.

AR. SARAVANAKUMARALAGAPPA UNIVERSITY, KARAIKUDI,TN

V.MAHALAKSHMI
Dean, Panimalar Engineering College

S.KANNAN
Ph.D , Annamalai University

Kanwar Dinesh Singh
Dept.English, Government Postgraduate College , solan

More.....

ISSN: 2249-894X IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF) VOLUME - 6 | ISSUE - 11 | AUGUST - 2017

REVIEW OF RESEARCH

सल्तनत युग की संस्कृति तथा समाज का सामान्य विश्लेषण

Dr. Bhavna Ramanbhai Prajapati
History Department, Anand Arts College, Anand.

सारांश

सल्तनत कालीन महिलाओं की स्थित के अध्ययन के लिए प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के ग्रन्थों के सूक्ष्म अध्ययन के माध्यम से वास्तविक स्थिति ज्ञात हो सकेगी जिसमें सल्तनत काल से पूर्व राजपूत काल एवं पश्चात् के मुगल कालीन स्थितियों के अध्ययन करने से सल्तनत कालीन महिलाओं के विभिन्न स्वरूप स्पष्ट होंगे। सल्तनत काल के सम्बन्ध में विभिन्न ग्रन्थों के अध्ययन से सल्तनत कालीन समाज काफी विकृत हो गया था फिर भी इस काल में अनेक महिलाओं ने विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। जिनमें कश्मीर की रानी दिद्दा, दिल्ली की सुल्तान रजिया जो गुलाम वंश से थी परन्तु आन्तरिक विरोध के कारण यह शासक मात्र 1236 से 1240 तक ही रह सकीं। 1260 से 1291 तक काकतीयवंश की रानी रुद्रमा भी इसी अवधि में द्वारसमुद्र राज्य की शासक रहीं, इनके अतिरिक्त बहमनी वंश की महिला शासक मखमूद जहां 1461 से 1469 तक दक्षिण महमनी की शासक थी।

प्रस्तावना

अशोक महान् की मृत्यु (232 ई. पू.) के बाद शताब्दियों तक हमारे देश में राजनीतिक एकता का अभाव था। हिमालय से कुमारी अन्तरीय तक समस्त देश इसके बाद कभी भी किसी एक राजा अथवा राजनीतिक नेता के केन्द्रीय शासन में न रहा। सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जिस समय मुहम्मद साहब अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे और उनके उत्तराधिकारी पूर्ण वेग से निकटवर्ती राज्यों को अपने अधीन कर रहे थे उस समय हर्ष उत्तर–पश्चिमी भारत में एक विशाल साम्राज्य की नींव डाल रहा था, जिसमें सम्पूर्ण उत्तरी भारत भी शामिल न था। विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिणी प्रदेश को जीतकर अपने राज्य में मिलाने की सारी कोशिशें जो हर्ष ने ली, बेकार हुई। इस महान् सम्राट की 647 ई. में मृत्यु के बाद उसके साम्राज्य के टुकड़े हो गये और इसके बाद देश के छोटे–छोटे राजाओं में प्रभुता के लिए युद्ध आरंभ हो गये। इस प्रदेश में 50 वर्ष से अधिक समय तक राजनीतिक अव्यवस्था फैली रही। आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यशोवर्मन के उत्थान तक इस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। देश के बचे हुए भागों को भी पहले की तरह स्वतंत्र राजाओं ने आपस में बाँट लिया। इन राजाओं का मुख्य ध्येय सैनिक यश प्राप्त करना था। समस्त देश में ऐसी कोई सरकार नहीं थी जो पूरे देश के हित के लिए काम करे। सभी राज्य पूर्ण स्वतंत्र और प्रभुत्वसम्पन्न थे, उत्तरी–पूरबी और उत्तरी–पश्चिमी सीमाएँ छोटे–छोटे स्वतंत्र राज्यों के अधीन थीं परन्तु संगठित होकर अपने देश की सीमाओं की रक्षा करने का किसी को भी ध्यान नही था।

भौगोलिक और राजनीतिक दृष्टि से हमारा देश निम्न भागों में विभक्त था –

1. हिमालय के पहाड़ी राज्य,
2. गंगा और सिन्धु का राज्य,
3. दक्षिणी राज्य, और
4. दक्षिणी प्रायद्वीप के राज्य

एक राज्य को दूसरे राज्य में सीमा–विस्तार करने से रोकने का कोई साधन नहीं था और सीमा–विस्तार एक साधारण–सी बात थी, क्योंकि उस समय के राजाओं में प्राचीन क्षत्रियों के दिग्विजय का आदर्श प्राप्त करने की भावना प्रबल थी जो बाद में कभी भी प्राप्त न हो सका। 8वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जब सिन्ध में अरब लोग अपनी विजय प्राप्त कर रहे थे, वातापी के राजा विक्रमादित्य द्वितीय ने पल्लवों को पराजित किया और उनकी राजधानी कांचीं पर अधिकार कर लिया। फिर पल्लव वंश का 9वीं शताब्दी के अन्त में नाश हो गया।

7वीं और 8वीं शताब्दियों में पूर्वजों को एक ही प्रकार की शासन–व्यवस्था का ज्ञान था और वह भी राजतंत्र। बौद्धकालीन प्राचीन गणतन्त्रों का पूर्णतया लोप हो चुका था। साधारणतया राजत्व वंषानुगत था। राजा अपने उत्तराधिकारी का नामकरण कर देता था और बहुधा वह उसका सबसे बड़ा पुत्र होता था, परन्तु चुनावों से लोग अपरिचित नहीं थे। बंगाल के पाल वंश का संस्थापक गोपाल 8वीं शताब्दी के

पूर्वार्द्ध में अपने प्रान्त की प्रमुख राजनीतिक शक्तियों द्वारा चुना गया था और इसी समय दक्षिण भारत में कांजी के पल्लव वंश का राजा नन्दीवर्मन पल्लवमल भी इसी प्रकार चुना गया था। आपत्तिकाल में राज्य का चुनाव एक प्रवर समिति को सौंप दिया जाता था जिसमें राज्य के प्रमुख सामन्त या ब्राह्मण अथवा दोनों ही रहा करते थे। इस प्रकार समितियों द्वारा भी चुने गये अनेक राजाओं का उल्लेख आता है जिनमें मुख्य कन्नौज और थानेश्वर का हर्शवर्द्धन था, जिसे अपने भाई राज्यवर्द्धन की मृत्यु के पश्चात् रिक्त सिंहासन की पूर्ति के लिए चुना गया था। स्त्रियों को भी सिंहासन पर बैठने का अधिकार था और कश्मीर, उड़ीसा तथा दक्षिण भारत के कुछ भागों में स्त्रियों ने भी समय–समय पर राज्य किया था।

इस काल के शासक निरंकुश थे। जनसाधारण का विश्वास था कि राजा पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि है, अतः अन्य लोगों से शक्ति और बुद्धि में बड़ा है फिर भी दैवी अधिकार के सिद्धान्त के आलोचक उस समय भी थे। राजा के अधिकारों पर दो प्रकार के नियंत्रण थे – एक नियम तथा प्राचीन परम्पराएँ और दूसरा जनता के विद्रोह का भय। वह कार्यपालिका का प्रमुख, सेना का सेनापित और न्याय का स्रोत समझा जाता था। परन्तु इन विस्तृत अधिकारों और कर्त्तव्यों के उसके हाथ में केन्द्रित होने पर भी वह अत्याचारी नहीं होता था, क्योंकि उस पर परम्परागत 'राजधर्म' का नियंत्रण रहता था, जिसका अर्थ है कि राजा प्रजा का पिता है, अतः उसे प्रजा की भलाई के लिए कार्य करना चाहिए।

वर्तमान सिन्ध प्रान्त की अपेक्षा आठवीं शताब्दी के हिन्दू सिन्ध राज्य का क्षेत्र अधिक विस्तृत था। वह उत्तर में काश्मीर तक, पूरब में कन्नौज तक तथा दक्षिण में समुद्र तक फैला हुआ था। इसकी उत्तर–पश्चिमी सीमा में वर्तमान बलोचिस्तान का बहुत बड़ा भाग तथा मकरान का समुद्री – तट सम्मिलित था। इसकी राजधानी अलोर (वर्तमान रोहेरा) थी। सारा राज्य चार प्रान्तों में बँटा हुआ था और प्रत्येक प्रान्त एक अर्द्ध–स्वतंत्र गवर्नर के अधिकार में था। स्वयं राजा के अधिकार में केवल राज्य का केन्द्रीय भाग ही था और प्रान्तों का वास्तविक अधिकार गर्वनरों के हाथ में था। ये गवर्नर सामन्त राजा कहलाते थे।

गजनवीं वंश के आक्रमणों के समय भारत की राजनीतिक दशा अरबों की सिन्ध विजय के समय से बहुत भिन्न थी। आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में हमारे देश में कोई विदेशी उपनिवेश न था, विदेशी सत्ता की उपस्थिति का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। पश्चिमी किनारे पर केवल कुछ अरब सौदागर रहते थे जिनका मुख्य पेशा व्यापार था। इसके विपरीत 10वीं शताब्दी में हमारे देश में मुल्तान और मंसूरा के दो विदेशी राज्य थे। इसके अतिरिक्त उन राज्यों की काफी जनता ऐसी थी जिसे मुसलमान बना लिया गया था। दक्षिण भारत में भी, विशेषकर मालाबार में, अरबों के उपनिवेश थे। वहाँ के शासकों ने मूर्खतावश विदेशियों को, देशी जनता को मुसलमान बनाने की आज्ञा दे दी थी। जिन लोगों ने विदेशी धर्म अंगीकार कर लिया था, वे विदेशी ढंग का रहन–सहन भी पसन्द करने लगे थे और गजनी तथा मध्य एशिया से आने वाले अपने मुसलमान भाइयों के साथ उनकी सहानुभूति थी। वास्तव में, उनके लिए यह स्वाभाविक भी था। सुबुक्तगीन, महमूद गजनवी और उनके 150 वर्ष बाद मुहम्मद गौरी इस दृष्टि से भाग्यशाली थे कि उन्हें भारतीय जनता के एक अंग की नैतिक सहानुभूति प्राप्त थी।

अरबों की सिन्ध विजय के बाद लगभग 300 वर्षों तक हमारा देश बाक्ष आक्रमणों से मुक्त रहा। इस प्रकार दीर्घकाल तक विदेशी आक्रमणों के भय से मुक्त रहने के कारण हमारी जनता में यह भावना उत्पन्न हो गयी कि भारत भूमि को कोई विदेशी शक्ति आक्रान्त कर ही नहीं सकती। कहा जाता है कि निरन्तर जागरुकता ही स्वाधीनता का मूल है, किन्तु उस युग में हमारे देश में इस भावना का लगभग लोप हो चुका था। हमारे शासक सैनिक विषयों में असावधान हो गये थे। उन्होंने उत्तर–पश्चिमी सीमाओं की किलेबन्दी नहीं की और न उन पर्वतीय देशों की रक्षा का ही प्रबन्ध किया जिनमें से होकर विदेशी सेनाएँ हमारे देश में प्रवेश कर सकती थीं। इसके अतिरिक्त हमारे लोगों ने उस नवीन रण–नीति और युद्ध प्रणाली से भी सम्पर्क नहीं रखा जिसका विकास अन्य देशों में हो चुका था। यही नहीं, राष्ट्रीय उत्साह तथा देशभक्ति की भावनाओं का भी हमारे देश में पूर्णतया लोप हो चुका था, क्योंकि ये भावनाएँ तो संकट के समय में अधिक बलवती होती हैं। प्रादेशिक देशभक्ति का तो वह युग भी नहीं था। देशप्रेम की जो कुछ भावना थी वह भी इसलिए जाती रही थी कि भ्रमवश लोग यह समझते थे कि बाक्ष आक्रमणों से हम पूर्णतया सुरक्षित हैं। आठवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक के युग में विचारों की संकीर्णता हमारे देशवासियों के चरित्र का एक अंग बन गयी थी। उनका विश्वास था कि हम सृष्टि की सर्वोत्तम जाति और ईश्वर के चुने हुए लोग हैं और दूसरे लोग हमारे सम्पर्क में आने के योग्य नहीं हैं। अलबरुनी नामक प्रसिद्ध विद्वान महमूद गजनवी के साथ हमारे देश में आया था। उसने यहाँ रहकर संस्कृत भाषा, हिन्दू–धर्म तथा दर्शन का अध्ययन किया। वह आश्चर्य के साथ लिखता है कि "हिन्दुओं की धारणा यह है कि हमारे जैसा देश, हमारी जैसी जाति, हमारे जैसा राजा, धर्म, ज्ञान और विज्ञान संसार में कहीं नहीं है।" वह यह भी लिखता है कि हिन्दुओं के पूर्वज इतने संकीर्ण विचारों के न थे जितने 11वीं शताब्दी के लोग थे। उसे यह देखकर भी बड़ा आश्चर्य हुआ था कि "हिन्दू लोग यह नहीं चाहते कि जो चीज एक बार अपवित्र हो चुकी है, उसे पुनः शुद्ध करके अपना लिया जाए।"

उस युग में हमारा देश शेष संसार से लगभग पूर्णतया पृथक था। यही कारण था कि हमारे देशवासियों का अन्य देशों से सम्पर्क टूट गया और वे बाक्ष जगत में होने वाली राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक घटनाओं से भी सर्वथा अनभिज्ञ रहे। अपने से भिन्न जातियों और संस्कृति से सम्पर्क न रहने के कारण हमारी सभ्यता गतिहीन होकर सड़ने लगी। वास्तविकता तो यह है कि इस युग में हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पतन के स्पष्ट लक्षण दिखायी देने लगे। इस युग के संस्कृत साहित्य में हम उतनी सजीवता और सुरुचि नहीं पाते जितनी की पूर्व में थी। हमारा समाज गतिहीन हो गया।[1]

सल्तनतकालीन राज्य का निर्माण

दसवीं शताब्दी के अन्त में महमूद गजनवी के भारत आक्रमण और कोई दो सौ साल बाद ही भारत पर गौरी के आक्रमण तुर्क व मंगोलों के खानाबदोषी के दूरगामी रूप थे। जैसा एशिया के अन्य हिस्सों में हुआ, भारत में तुर्कों के आक्रमण के परिणाम स्वरूप तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में सल्तनत नामक एक स्वाधीन राजनीतिक सत्ता का निर्माण दिल्ली में हुआ।

सल्तनत शब्द से दिल्ली में तुर्कों की राजधानी से उत्तरी भारत के बड़े हिस्सों पर उनके राज्य का ज्ञान होता है। दिल्ली सल्तनत दो सौ वर्षों से अधिक समय तक अस्तित्व में रही है इस बीच इसमें नयी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्वरूपों का जन्म हुआ।

तुर्क अपने साथ जो कुछ लेकर आए थे और जो भारत में उन्होंने पाया, यह स्वरूप उनका मिश्रण था, यहीं बात दिल्ली सल्तनत के बाद आने बाले मुगल साम्राज्य के लिए भी कही जा सकती है।

मध्य एशिया एक अस्पष्ट भौगोलिक शब्द है। इसमें एक विशाल और विविध क्षेत्र आता है जिसके दक्षिण में पहाड़ों की एक विराट श्रृंखला है, जिसका एक हिस्सा हिमालय है। इसकी उत्तरी सीमाएं यूराल की पर्वत श्रृंखला के आसपास पहुंचती हैं। पश्चिमी सीमाएं यूराल तथा केस्पियन सागर तक तथा पूर्वी सीमा बलकश और बैकल झीलों के बीच के क्षेत्र में सम्भवतः इरतिश नदी तक है।

एक क्षेत्र के नाम के रूप में मध्य एशिया का कम से कम एक प्रतिद्वंद्वी है– तुर्किस्तान। तुर्किस्तान का भौगोलिक विस्तार तो मध्य एशिया जैसा नही है, लेकिन उसमें मध्य एशिया में आने वाले क्षेत्रों का एक बहुत बड़ा हिस्सा आ जाता है। शायद यह एक ऐसे क्षेत्र का विवरण देता है जिसकी आबादी में तुर्कों की प्रधानता है। लेकिन, जब इस शब्द का प्रयोग ऐतिहासिक संदर्भ में किया जाए, तो यह ध्यान देना चाहिए कि तुर्किस्तान एक जातिनाम हैः यह एक जातीय क्षेत्र और एक मानस समुदाय को व्यक्त करता है। दोनों ही मामलों में, जो बदलाव इन शताब्दियों में आए वे गहरे रहे हैं।

तुर्किस्तान की भौतिक और मानवीय दोनों सीमाएं बारी–बारी से परिवर्तित हुई हैं, सिकुड़ी हैं और फैली भी हैं। जब आधुनिक राज्यों ने अपेक्षाकृत स्थिर सीमाएं और आबदियां हासिल की तब तक होती रही हैं। आधुनिक राजनीतिक सीमाओं के अर्थ में, इसमें सोवियत समाजवादी गणराज्य तजकिस्तान, उजबेकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, किर्धीजिया ओर चीनी तुर्किस्तान आ जाते हैं।[2]

सल्तनत काल के उदय पर चर्चा करने से पहले यह आवश्यक है कि हमें सल्तनत काल में आने वाले क्षेत्रों की एक मानसिक तस्वीर बनाएं और उनकी कुछ उल्लेखनीय विशेषताओं की जानकारी ज्ञात करें सल्तनतकाल एक अस्पष्ट भौगोलिक शब्द है इसमें एक विशाल और विविध क्षेत्र आता है।

भौगोलिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि में एक समय था जब अफगानिस्तान भारत का ही भाग माना जाता था। राजनीतिक दृष्टि से भी वह चन्द्रगुप्त मौर्य के समय से तीसरी शताब्दी ई.पू. भारत का प्रान्त बना रहा।[3] 1947 में भारत से पाकिस्तान के पृथक होने से स्पष्ट है कि सल्तनत काल में पाकिस्तान भी भारत का अभिन्न भाग था।

सल्तनत काल के इतिहास में 1206 से 1290 तक का समय निर्माणात्मक एवं चुनौतियों से भरपूर रहा। 1206 में मोहम्मद गौरी की मृत्यु पश्चात् उसके तीन सेनापतियों ताजुद्दीन यल्दूज, नासिरूद्दीन कुवाचा एवं कुतुबुद्दीन सेवक के बीच सर्वोच्चता का संघर्ष प्रारंभ हो गया। इस काल के लिए भ्रमवंश एक और लोकप्रिय धारणा चली आ रही है। 1206 से 1526 तक के समस्त युग को पठान वंश कहा गया है, जबकि 1451 तक सभी शासक तुर्क थे पठान नहीं थे। मात्र 1451 से 1526 तक पठानों ने दिल्ली में राज्य किया। जिससे इस युग को पठान युग कहना अनुचित होगा बल्कि इसका शुद्ध नाम "सल्तनतकाल" होना चाहिए।[4]

सल्तनत युग की संस्कृति

मुसलमानों के भारत आगमन के साथ भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में अत्यधिक परिवर्तन हुए। समन्वयकारी भारतीय संस्कृति इन लोगों को अपने अन्दर न मिला सकी। मुसलमान इस्लामिक संस्कृति के प्रचार के लिए भारत आये थे। अतः उन्होंने हिन्दुओं पर अनेक अत्याचार किये। उनके मन्दिरों को ध्वस्त किया तथा उन्हें बलपूर्वक मुसलमान बनाया। जिससे हिन्दू–मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय काफी कठिन रहा।

हिन्दू संस्कृति शिथिल पड़ चुकी थी तथा उसमें मुसलमानों को अपने अन्दर मिलाने की क्षमता नहीं थी। जाति–प्रथा ने इसे संकीर्ण बना दिया था। इसके पश्चात् भी हिन्दू संस्कृति में समन्वय की प्रवृत्ति थी। वे अल्लाह को विष्णु का रूप तथा मुहम्मद को बुद्ध के समान अवतार मानने को तैयार थे, किन्तु इस्लाम की कट्टरता के कारण यह संभव नहीं हो सका।

प्रारंभ में मुसलमान अपनी धार्मिक कट्टरता पर तथा हिन्दू अपने मिथ्या स्वाभिमान पर डटे रहे, किन्तु शनैःशनैः वे परस्पर निकट आने लगे। इस्लाम का भारत में प्रसार तलवार तथा जजिया कर की अपेक्षा सन्तों की समन्वय की नीति से अधिक हुआ। रामधारीसिंह दिनकर लिखते हैं, "भारत में इस्लाम का प्रसार तलवार से कम, जजिया के भय से बहुत कम, किन्तु सन्तों का प्रभाव आसानी से पड़ा, क्योंकि नीची जाति के लोग ऊँची जाति से अत्यन्त पीड़ित थे।" चार्ल्स इलियट के अनुसार, "समन्वय की प्रवृत्ति भारत में तुर्क साम्राज्य की स्थापना से पहले ही आरंभ हो गयी थी। रामानुज व शंकर इस्लाम धर्म से प्रभावित थे।" इसी तरह डॉ. ताराचन्द लिखते हैं, "शंकराचार्य के उत्थान से पूर्व केरल में इस्लाम धर्म का प्रचार हो चुका था।" यह मत असत्य है। हिन्दू इस्लाम के एकेश्वरवाद से तथा मुसलमान हिन्दू तत्व ज्ञान से प्रभावित थे सूफी सन्तों जैसे ख्वाजा मुईनुद्दीन, निजामुद्दीन औलिया आदि ने तथा कबीर, नानक आदि भक्त कवियों ने दोनों सम्प्रदायों में समन्वय तथा एकता स्थापित करने के प्रयत्न किये। डॉ. ताराचन्द यहाँ तक मानते हैं, "धर्म तथा भक्ति आन्दोलन की आत्मा इस्लामी है।" मुसलमान एवं हिन्दू धर्म के सम्पर्क के परिणामस्वरूप सत्यवीर, सतनामी, नारायणी आदि सम्प्रदायों का जन्म हुआ, जो दोनों धर्मों के लिए मान्य थे। सत्यवीर सम्प्रदाय की स्थापना 15वीं सदी में बंगाल के सुल्तान हुसैनशाह ने की। इसमें हिन्दू–मुस्लिम उभयनिष्ठ देवता की 'सत्य पीर' नाम से प्रतिष्ठा हुई।[5]

राज्य का स्वरूप

अन्य सभी इस्लामी राज्यों की भांति भारत में तुर्की सल्तनत भी साम्प्रदायिक आधार पर टिकी हुई थी। कुरान तथा मुस्लिम शास्त्रकारों द्वारा प्रतिपादित इस्लामी नियम उसके मुख्य आधार थे। कुरान के नियम धार्मिक थे और शरा कहलाते थे। इस्लाम राजधर्म था और सिद्धान्त की दृष्टि से राज्य के सभी साधन उसके प्रचार के लिए उपलब्ध थे। किन्तु व्यवहार में इन सिद्धान्तों में अनेक रूप–भेद हो गए थे। भारत जैसे देश में यह रूप–भेद अवश्यम्भावी थे क्योंकि यहां की बहुसंख्यक जनता गैर–मुस्लिम थी और यहां की राजनीतिक परिस्थितियां भी उससे बहुत भिन्न थीं जिसकी कल्पना मुस्लिम शास्त्रकारों ने की थी।

शुद्ध इस्लामी सिद्धान्त के अनुसार मुस्लिम राज्य का वास्तविक राजा ईश्वर माना जाता है। सांसारिक राजा तो उसका

प्रतिनिधि–मात्र है और कुरान द्वारा जो उसकी इच्छा प्रकट होती है उसको वह कार्यान्वित करता है। राज्य की प्रमुख शक्ति उस व्यक्ति के हाथ में रहती थी, जिसको मिल्लत अथवा देश की समस्त मुस्लिम जनता निर्वाचित करती थी। भारत में तो वह एक ढकोसला–मात्र रह गया। प्रारंभ में जो तुर्क हमारे देश में आए उनमें उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था और न कोई ऐसी सर्वमान्य प्रणाली थी जिसके अनुसार विवादग्रस्त उत्तराधिकार के प्रश्न को हल किया जा सकता। 13वीं शताब्दी में सामान्तया यह नियम था कि नया सुल्तान स्वर्गीय सुल्तान के परिवार के बचे हुए सदस्यों में से चुना जाता था। वंश, योग्यता, स्वर्गीय सुल्तान की इच्छा तथा अमीरों का समर्थन – चुनाव में मुख्यतया यही तत्व निर्णायक सिद्ध होते थे। किन्तु वास्तव में शक्तिशाली अमीरों की इच्छा पर ही चुनाव निर्भर रहता था। स्मरण रखने की बात यह है कि अमीर सदैव राज्य के हितों का नहीं, अपितु अपने व्यक्तिगत स्थार्थों का ध्यान रखते थे।

दिल्ली सल्तनत सैनिक राज्य था और जनता की इच्छा पर नहीं बल्कि शक्ति पर आधारित था। उसकी समस्त भूमि पर शक्तिशाली तुर्की सैनिकों का अधिकार था। देश के भीतर सामरिक महत्व के स्थानों पर रक्षा सेनाएं नियुक्त कर दी गई थीं।

समाज तथा संस्कृति

शासक–वर्ग में विभिनन कबीलों के तुर्क थे। उनके अतिरिक्त ईरानी, अफगान, अरब आदि अन्य विदेशी भी थे। तुर्कों में उच्चता की भावना का प्राबल्य था। वे नस्ल की शुद्धता तथा श्रेष्ठता के सिद्धांत को मानते थे इसीलिए उन्होंने भारतीय मुसलमानों को जिनकी संख्या बढ़ रही थी, राज्य की शासन–व्यवस्था में स्थान नहीं दिया। किन्तु इस भावना के होते हुए भी विभिन्न नस्लों का बहुत–कुछ मेल–मिलाप हुआ। जिसके परिणामस्वरूप 13वीं शताब्दी में भारतीय मुस्लिम जनता वर्णसंकर होती गई। भारतीय मुसलमानों, मध्य एशिया के शरणार्थियों तथा मंगोलों में जिन्होंने इस्लाम अंगीकार कर लिया था, विवाह–सम्बन्ध होने लगे जिसके फलस्वरूप इस देश में मुसलमानों की विभिन्न नस्लों का विलयन हो गया।

उलुगखां का पद सर्वोच्च था और एक समय में एक ही उलुगखां होता था। गुलामों को भी नीचे से ऊंचे पद पर पहुंचने का अधिकार था और वे भी अमीर तथा मलिक हो सकते थे। उनमें से बलबन को छोड़कर कोई भी खान के पद पर नहीं पहुंच सका। मुस्लिम समाज मुख्यतया नगरों में केन्द्रित था। सैनिकों तथा कर्मचारियों के अतिरिक्त उसमें व्यापारी, दस्तकार, दुकानदार, क्लर्क तथा भिखारी भी रहे होंगे। अन्य प्रभावशाली वर्ग गुलामों का था। उनमें से अधिकतर गैर–मुसलमान माता–पिता की संतान थे, किन्तु उन्हें गुलाम बनाकर बेच दिया गया और मुसलमान बना लिया गया था। अपने मुस्लिम स्वामियों के घरों में ही उनका पालन–पोषण हुआ था। मुस्लिम जनसंख्या में सुन्नियों का बाहुल्य था। शिया लोग अधिकतर मुल्तान और सिन्ध में पाए जाते थे। किन्तु उनमें से अनेक दिल्ली तथा तुर्की सल्तनत के अन्य नगरों में भी रहते थे। वास्तव में सुन्नी लोग जिनके हाथ में राजशक्ति थी, शियाओं से घृणा करते थे। तीसरा धार्मिक वर्ग भी था जिसके सदस्य सूफी कहलाते थे। ये मुस्लिम रहस्यवादी और शिक्षित थे वे ईश्वर से सीधा सम्पर्क स्थापित करने में विश्वास करते थे। वे पवित्रता तथा दरिद्रता का जीवन बिताते और नगर–निवासियों के समाज से दूर रहते थे। सूफी सन्तों के अनेक अनुयायी थे।[6]

सामान्तया लोग नहीं जानते हैं कि हिन्दुस्तान में मुहम्मद गौरी द्वारा स्थापित राज्य का विस्तार उसके उत्तराधिकारी गुलाम सुल्तानों के शासनकाल में उतना ही बना रहा। यदि कोई परिवर्तन हुआ भी तो उसके फलस्वरूप वह सिकुड़ ही गया, उसमें वृद्धि नहीं हुई। मुहम्मद गौरी तथा सुल्तान होने से पहले कुतुबुद्दीन ऐबक ने जितनी भूमि जीत ली थी उसमें तथाकथित गुलाम सुल्तानों में से कोई भी उल्लेखनीय वृद्धि नहीं कर सका। सुल्तनत के अन्तर्गत बसने वाले हिन्दू शासकों ने बारम्बार इस युग में तुर्की प्रभुत्व को बहिष्कार करने का प्रयत्न किया। मिनहाजुद्दीन सिराज द्वारा रचित 'तबकाते–नासिरी' का सरसरी दृष्टि से निरीक्षण करने से ही ज्ञात होता है कि सुल्तानों को प्रतिवर्ष विद्रोही हिन्दुओं तथा विरोधी किसानों का दमन करने के लिए सैनिक–यात्राएं करनी पड़ती थीं। लगभग प्रत्येक सुल्तान को एक ही भू–प्रदेश अनेक बार जीतना पड़ता था। इन परिस्थितियों में गुलाम सुल्तानों के सामने समस्या यह थी कि अनेक पूर्वाधिकारियों से प्राप्त राज्य की रक्षा कैसे की जाय, आक्रमणकारी युद्धों द्वारा नये प्रदेश जीतने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। प्रत्येक शासनकाल में सल्तनत की सीमाएँ घटती–बढती रहती थीं। सामान्यतया उसकी सीमाएँ उत्तर में हिमालय की तराई तक पहुंचती थीं और दक्षिण में एक टेढ़ी–मेढ़ी रेखा बंगाल से सिन्धु तक जाती थी, जिसके अन्तर्गत उत्तरी बंगाल, उत्तरी बिहार, बुन्देलखण्ड का कुछ भाग, ग्वालियर, रणथम्भौर, अजमेर तथा नागपुर आ जाते थे और जो जैसलमेर के उत्तरी भाग से होती हुई आगे चलकर सिन्ध को गुजरात से अलग करती थी। पूरब में ढाका के पश्चिम तक आधा बंगाल दिल्ली सल्तनत का अंग था। उत्तर–पश्चिमी सीमा साधारणतया झेलम तक पहुंचती थी किन्तु कभी–कभी सिकुड़कर व्यास तक ही रह जाती थी। बहुधा लाहौर, सिन्ध और मुल्तान सल्तनत के अन्तर्गत बने रहे। नमक की पहाड़ियों का प्रदेश, जम्मू तथा कश्मीर और पंजाब के उत्तर–पूरबी तथा उत्तर–पश्चिमी कोने दिल्ली राज्य की सीमाओं के बाहर थे। इन सीमाओं के भीतर भी अनेक स्वतंत्र हिन्दू सामन्त राज्य करते थे, मुख्यतया हिमालय की तराई, दोआब के उत्तरी भाग, राजस्थान तथा बुन्देलखण्ड आदि थे। इन्हें दिल्ली सुल्तान कभी पूर्णतया विजय नहीं कर पाये थे। इसीलिए अपने राज्य की सीमाओं के भीतर भी गुलाम सुल्तान निरंकुश सत्ता का उपभोग नहीं कर पाते थे।

अन्य सभी इस्लामी राज्यों की भाँति भारत में तुर्की सल्तनत भी साम्प्रदायिक आधार पर टिकी हुई थी।[7] मोहम्मद गौरी दिल्ली के समीप इन्द्रप्रस्थ में कुतुबुद्दीन ऐबक के नेतृत्व में अपनी सेना को छोड़कर अपनी योजना को मध्य एशिया में कार्यान्वित करने के लिए वापस लौट गया। ऐबक को राज्य को सुदृढ़ एवं शक्तिशाली बनाने के लिए विस्तृत अधिकार प्रदान किए गए और इसी के पश्चात् तराइन का युद्ध भारत के इतिहास में निर्णायक साबित हुआ। इसने तुर्की सत्ता की स्थापना के मार्ग को प्रशस्त किया। ठीक इसी समय से राजपूत शक्ति के पतन के युग का भी प्रारंभ हो गया। कुछ समय के लिए गौरी वंश के लोगों ने सभी विजयी क्षेत्रों के प्रशासन को तुरंत अपने हाथ में लेना उचित नहीं समझा जहां उन्हें उचित लगा उन्होंने राजपूतों की सत्ता को जारी रहने दिया, मगर उनके द्वारा तुर्की सत्ता के प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया गया और अजमेर का शासन, पृथ्वीराज के पुत्र को सामन्त के रूप में सौंप दिया गया। यद्यपि यह जटिल संतुलन अक्सर, स्थानीय शासकों एंव गौर वंश के शासकों के साम्राज्य विस्तार की योजना के मध्य संघर्ष के कारण, भंग होता रहता था।

कुतुबुद्दीन ऐबक के नेतृत्व में तुर्कों ने अपने राज्य का सभी दिशाओं में क्षेत्रीय विस्तार किया। 1192 ई में अंत में झाँसी की किलेबंदी करने के बाद ऐबक ने यमुना नदी के पार ऊपरी दोआब में सैनिक केन्द्रों को स्थापित किया। मेरठ एवं बरन वर्तमान बुलन्दशहर पर 1192 ई.

में कब्जा कर लिया। सन् 1193 ई. में दिल्ली उनके अधिकार में आ गई। दिल्ली की स्थिति तथा उसकी ऐतिहासिक परम्परा के कारण तुर्कों ने उसे अपनी राजधानी बनाया, जो पंजाब के पड़ोस में स्थित था और पूर्व की ओर अभियानों को संचालित करने के लिए भी एक सुविधाजनक केन्द्र था। 1194 ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक ने एक बार फिर यमुना नदी को पार किया और कोल (अलीगढ़) पर नियंत्रण कर लिया।

मोहम्मद गौरी ने उपरोक्त सैनिक सफलताओं से उत्साहित होकर गहढ़वाल वंश के राजा जयचन्द्र पर चन्द्रवार (एटा और कानपुर के बीच) में आक्रमण किया। जयचन्द्र अकस्मात पराजित हो गये। इसके बाद तुर्कों ने अपने सैनिक अड्डों को बनारस, असनी जैसे महत्वपूर्ण नगरों में स्थापित किया, लेकिन राजधानी कन्नौज पर 1198–99 तक अधिकार न किया जा सका।

बयाना, ग्वालियर एवं अन्हिलवाड़ा जैसे अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर तुर्कों का 1195–98 तक अधिकार हो गया। बदायूं को 1197–98 में नियंत्रण में लिया गया। 13वीं सदी के प्रारंभ में "अंतिम राजपूत साम्राज्य" बुन्देलखण्ड के चन्देलों के विरुद्ध लगभग 1202 ई. में सैनिक अभियान भेजा गया। कालिन्जर, महोबा एवं खजुराहो पर नियंत्रण कर लिया गया।[8]

सल्तनत का संस्थापक :

प्रसिद्ध इतिहासकार हेग तथा अनेक अन्य विद्वानों ने कुतुबुद्दीन ऐबक को भारत में मुस्लिम साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक बताया है। प्रो. ए.बी. एम. हबीबुल्ला के अनुसार "यद्यपि मुईजद्दीन ने संचालन की प्रेरणा दी परन्तु ऐबक ने ही दिल्ली राज्य के प्रत्येक पहलू की योजना तथा व्यवस्थानुसार संगठित किया।" निःसन्देह मुईजुद्दीन की योजनाओं को कार्यान्वित करते समय उनमें परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन एवं संशोधन ऐबक ने ही किया होगा इसलिए उसकी सफलता का श्रेय अगर ऐबक को दे दिया जाए तो गलत नहीं होगा। वह विपरीत राजनीतिक परिस्थितियों के कारण दिल्ली सल्तनत को स्थायी एवं सुदृढ़ न कर सका तो भी यह मानना पड़ता है कि उसने इल्तुतमिश के लिए किसी हद तक सल्तनत को सुदृढ़ करने का कार्य सरल किया गया।

कुतुबुद्दीन ऐबक की अचानक मृत्यु (1210 ई. में) के बाद दिल्ली सल्तनत में अव्यवस्था फैल गई। कुछ अमीरों ने आरामशाह को लाहौर के सिंहासन पर बैठाया। कुछ इतिहासकारों के अनुसार आरामशाह ऐबक का पुत्र था तो कुछ के अनुसार नहीं। इतिहासकार जुबैनी ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि ऐबक का कोई पुत्र नहीं था। निहाजुस्सिराज सुल्तान कुतुबुद्दीन के तीन पुत्रों का उल्लेख मिलता है। परन्तु दिल्ली के लोगों एवं अमीर तुर्कों ने कई कारणों से उसका विरोध किया।

कुतुबुद्दीन ऐबक से (1206 ई.) लेकर कैकुबाद (1289 ई.) तक के सभी सुल्तान भारतीय इतिहास में मामलूक सुल्तानों के नाम से जाने जाते हैं। इन्होंने दिल्ली सल्तनत के सुदृढ़ीकरण में अपने–अपने काल में विभिन तरह से योगदान किया।

1206 ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक ने ही मुइज्जुद्दीन (मुहम्मद गौरी) की मृत्यु के बाद इस सल्तनत की नींव रखी थी वस्तुतः उसने तराइन की दूसरी लड़ाई (1192ई.) के बाद से भारत में सल्तनत के विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उसने अजमेर और मेरठ में विद्रोह का दमन किया। उसने हांसी, दिल्ली और रणथम्भौर और कोइल को भी विजय किया। उसने 1194 ई. में कन्नौज के शासक जयचंद को पराजित करने में मुहम्मद गौरी को सहायता दी थी। 1197 ई. में गुजरात के शासक भीमदेव द्वितीय को हराया और उसकी राजधानी को लूट लिया। 1202 ई. में उसने बुन्देलखण्ड में कालिंजर के दुर्ग को विजय किया। उसने बुन्देलखण्ड की राजधानी महोबा और उसके बाद बदायूँ (उत्तर प्रदेश) को भी जीता। संक्षेप में उसी के प्रयत्नों से दिल्ली सल्तनत का विस्तार लगभग सारे उत्तरी भारत पर दिल्ली में कालिंजर लाहौर तथा गुजरात से बंगाल –बिहार तक हो गया।

रजिया का सुल्तान बनना

इल्तुतमिश अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अपने उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर चिन्तित था। यद्यपि उसके अनेक पुत्र थे परन्तु वे सभी अयोग्य तथा विलासी थे। यह अपने किसी पुत्र को सुल्तान बनने के योग्य नहीं समझता था। बहुत सोचने विचारने के उपरान्त उसने अपनी पुत्री रजिया को अपना सिंहासन सौंपने का निर्णय लिया। कहते हैं कि अल्तमश को सन्देह था कि शायद उसकी मृत्यु के बाद उसकी बेटी को सिंहासन पर बैठाया जाएगा अथवा नहीं इसीलिए उसने तुर्क सरदारों से अपने निर्णय को मनवा भी लिया था।

मुईजुद्दीन बहरामशाह

इल्तुतमिश का तीसरा पुत्र था। उसे इस शर्त पर गद्दी पर बैठाया गया था कि वह तुर्क अमीरों और मलिकों को पूर्णरूप से राजशक्ति का उपभोग करने देगा और स्वयं केवल राज्य मात्र ही करेगा, शासन नहीं। तुर्क अमीरों को उसने नाइब–ए–मुमालिकात को नियुक्त करने का भी अधिकार दे दिया जो उसी समय नया स्थापित किया गया था। अतः इख्तियारुद्दीन एतगीन नामक व्यक्ति इस उच्च पद पर नियुक्त किया गया। मुहाजबुद्दीन वजीर के पद पर कार्य करता रहा, किन्तु अब इस पद का महत्व गौण रह गया था। इस भांति राज्य में तुर्क सैनिक अमीरों का प्रभुत्व पूर्ण हो गया।

अलाउद्दीन मसूदशाह

सल्तनत में तुर्क अमीरों का प्रभुत्व से स्थापित हो गया और सुल्तान को फिर उनके हाथों पराजित होना पड़ा। विजयी अमीरों ने अपने में से ही किसी सदस्य को गद्दी पर बैठा दिया होता, किन्तु पारस्परिक ईर्ष्या के कारण वे अपने में से योग्यतम व्यक्ति के गुणों को न परख सके थे। परिणामस्वरूप उन्होंने इल्तुतमिश के पौत्र तथा रुकुनुद्दीन फीरोजशाह के पुत्र अलाउद्दीन मसूदशाह को इस शर्त पर गद्दी पर बैठाया कि वह अपने पूर्वाधिकारी द्वारा किये गये समझौते की शर्तों का पालन करेगा और राज्य की समस्त शक्ति 'चालीस' के सुपुर्द करके स्वयं केवल सुल्तान की उपाधि का उपभोग करेगा।

गयासुद्दीन तुगलकशाह

गाजी तुगलक का जन्म एक निम्न कुल में हुआ था। उसका पिता बलबन का एक तुर्की गुलाम था और माता पंजाब की एक जाटनी। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने अपना जीवन एक साधारण सैनिक के रूप में प्रारंभ किया था। और केवल अपनी योग्यता तथा परिश्रम के कारण वह महत्वपूर्ण पद पर पहुंच गया। 1305 ई. में वह पंजाब का सूबेदार नियुक्त हुआ और दिपालपुर उसकी राजधानी थी। उसे मंगोलों के आक्रमण के विरुद्ध उत्तर–पश्चिमी सीमाओं की रक्षा का भार सौंपा गया था। कहा जाता है कि उसने उन्तीस बार आक्रमणकारियों से टक्कर ली और उन्हें पराजित किया। इसलिए वह मलिक–उल–गाजी के नाम से विख्यात हुआ। अलाउद्दीन के शासनकाल के अन्तिम दिनों में उसकी गणना राज्य के गिने–चुने शक्तिशाली अमीरों में होने लगी।

कुतुबुद्दीन मुबारकशाह के शासनकाल में वह अपने पद पर पूर्ववत कायम रहा। सिंहासन पर बैठने के समय खुसराव ने भी उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न किया और पंजाब के सूबेदार के पद पर स्थायी कर दिया, किन्तु वह तथा उसका पुत्र जूनाखाँ अत्यधिक महत्वाकांक्षी थे। महात्वाकांक्षा तथा 13वीं शताब्दी के तुर्कों की सी अपनी जातीय और धार्मिक कट्टरता से अनुप्राणित होकर उसने खुसराव के विरुद्ध विद्रोह संगठित किया और अन्त में उसे हराकर मार डाला। तदुपरान्त एक विजेता के रूप में उसने दिल्ली में प्रवेश किया। कहा जाता है कि उसने इस बात की जांच करायी कि अलाउद्दीन के वंश का कोई व्यक्ति जीवित तो नहीं है जिसे मैं दिल्ली के सिंहासन पर बिठा दूँ। यह कहना तो कठिन है कि उसने यह जाँच ईमानदारी से करायी थी अथवा जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए यह कृत्य किया था। कुछ भी हो, 8 सितम्बर, 1320 ई. को वह गयासुद्दीन तुगलकशाह गाजी के नाम से सिंहासन पर बैठा। वह दिल्ली का पहला सुल्तान था जिसने अपने नाम के साथ 'गाजी' काफिरों का बध करने वाला शब्द जोड़ा।

सिकन्दर लोदी

बहलोल की मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी के प्रश्न को लेकर उसके मुख्य अमीरों के दो दल बन गये। एक दल उसके तीसरे पुत्र निजामा खाँ को जो जनता में सिकन्दरशाह के नाम से विख्यात था, सिंहासन पर बिठाना चाहता था, किन्तु दूसरा दल जो अधिक शक्तिशाली था, निजाम को सुल्तान बनाने को इसलिए विरुद्ध था कि उसकी माता एक सुनार की पुत्री थी। इस दल के लोग स्वर्गीय सुल्तान के सबसे बड़े पुत्र बारबकशाह के समर्थक थे जो उस समय जौनपुर का शासक था। जब बहलोल मृत्यु–शैय्या पर पड़ा हुआ था तो उन्होंने उसे निजाम को दिल्ली से बुलाने के लिए बहलाया क्योंकि उन्हें डर था कि पिता की मृत्यु होने पर वह कहीं सिंहासन न हस्तगत कर ले। किन्तु किसी न किसी बहाने निजाम ने वहाँ से चलने से इन्कार कर दिया। निजमा की माँ अपने पति के साथ खेमे में ही थी। उसने अपने पुत्र के अधिकार का समर्थन किया, किन्तु बहलोल के चचेरे भाई ईसाखाँ ने उसे गालियाँ दी और अशिष्टतापूर्ण शब्दों में कहा कि एक सुनार माता का पुत्र. दिल्ली की गद्दी के लिए नहीं चुना जा सकता। ईसाखाँ के इस प्रकार के अभद्र व्यवहार के कारण बहुसंख्यक दल के कुछ सदस्य भी उस विधवा के साथ सहानुभूति दिखाने लगे। परिणाम यह हुआ कि खानेखाना ने ऐसी चाल चली कि अधिकतर पठान अमीर निजामखाँ के समर्थक हो गये और 17 जुलाई 1489 ई. को सिकन्दरशाह के नाम से उसे सुल्तान घोषित कर दिया गया।[9]

भारतीय इतिहास में 1206 से 1526 ई. तक के काल को सल्तनत काल के नाम से जाना जाता है जिसमें एक के बाद एक क्रमशः पाँच वंशों दासवंश 1206 से 1290, खिलजीवंश 1290 से 1320, तुगलक वंश 1320 से 1414, सैयदवंश 1415 से 1451 और लोदीवंश 1451 से 1526 तक राज्य किये है।[10] जिनैका हम सल्तनत काल के नाम से अध्ययन करते हैं।

निष्कर्ष

सामान्य तौर पर 13वीं शताब्दी का मुस्लिम समाज दो वर्गों में विभक्त था – सैनिक तथा बुद्धिजीवी। तुर्कों का स्थान पहली कोटि में था और दूसरे वर्ग में धार्मिक तथा साहित्यिक लोग सम्मिलित थे जो अधिकतर गैर–तुर्क थे। राज्य में धर्मोपदेशकों तथा अध्यापकों का काम उन्हीं के हाथों में था। मुस्लिम सामन्त–वर्ग में तुर्की रक्त का प्राधान्य था। यह वर्ग एक सीढ़ी की भांति था, जिसमें अनेक कक्षाओं के लोग थे और जिसके शिखर पर अमीरों, मालिकों तथा खानों का स्थान था।

अल्तमश ने न केसल नवनिर्मित तुर्की साम्राज्य की रक्षा एवं विस्तार किया बल्कि अपने साम्राज्य की जनता को कुशल शासन प्रबन्ध देकर एक कुशल शासक तथा श्रेष्ठ प्रशासक होने का भी परिचय दिया। सैनिक अभियानों के बाद उसे जो भी समय मिलता था वह उसने शासन व्यवस्था के सुधार में लगाया। उसने नये सिक्के, इक्ता प्रणाली, चालीस के संगठन आदि को व्यवस्था करने के साथ–साथ न्याय व्यवस्था में भी सुधार किया। मुहम्मद तुगलक के काल में आये इब्नबतूता नामक यात्री ने भी उसकी न्याय प्रणाली के बारे में लिखा है कि "इल्तुतमिश ने अपने महल से बाहर एक घंटी बांध रखी थी ताकि दीन दुखियों को सुल्तान के समक्ष अपनी फरियाद रखने में कोई कठिनाई महसूस ने हो।" उसे पूर्व मध्यकालीन भारत का एक श्रेष्ठ शासक माना जाता है।

अमीरों तथा जनता को प्रसन्न करना सुल्तान का पहला कार्य था। वह शुद्ध तुर्की नस्ल का था, इसलिए बचे हुए तुर्की अमीरों तथा पदाधिकारियों पर अपनी सत्ता कायम करने में उसे अधिक कठिनाई नहीं हुई। उसने उन खलजी लड़कियों के विवाह का प्रबन्ध किया जो अपने वंश की पराजय के बाद बच रही थी।

संदर्भ सूची:

1. श्रीवास्तव आर्शीवादीलाल दिल्ली सल्तनत 711.1526. पेज 1, 5, 8, 41, 44.
2. फारुथी, आर.के. – सल्लतनतकालीन भारत पेज 1.2.
3. श्रीवास्तव, आर्शीवादी लाल – दिल्ली सल्तनत 711 से 1526 पे. 1, 5, 8, 41, 44, 47.
4. फारुथी, आर.के. – सल्लतनतकालीन भारत पेज 17, 71.
5. नागौरी, एस.एल. दिल्ली सल्तनत पेज 167.

6. परूथी आर.के – सल्तनतकालीन भारत पेज 111, 120.
7. श्रीवास्तव , आर्शीवादीलाल – दिल्ली सल्तनत 71–1526 पेज 124.
8. पारुथी आर.के. – सल्तनत कालीन भारत पेज 15.
9. श्रीवास्तव, आर्शीवादीलाल – दिल्ली सल्तनत 711 से 1526 पेज 104, 105, 172, 225.
10. पाठक रश्मि – दिल्ली सल्तनत का इतिहास.

Dr. Bhavna Ramanbhai Prajapati
History Department, Anand Arts College, Anand.

Publish Research Article
International Level Multidisciplinary Research Journal
For All Subjects

Dear Sir/Mam,

We invite unpublished Research Paper,Summary of Research Project,Theses,Books and Books Review for publication,you will be pleased to know that our journals are

Associated and Indexed,India

- Directory Of Research Journal Indexing
- International Scientific Journal Consortium Scientific
- OPEN J-GATE

Associated and Indexed,USA

- DOAJ
- EBSCO
- Crossref DOI
- Index Copernicus
- Publication Index
- Academic Journal Database
- Contemporary Research Index
- Academic Paper Databse
- Digital Journals Database
- Current Index to Scholarly Journals
- Elite Scientific Journal Archive
- Directory Of Academic Resources
- Scholar Journal Index
- Recent Science Index
- Scientific Resources Database

Review Of Research Journal
258/34 Raviwar Peth Solapur-
413005,Maharashtra
Contact-9595359435
E-Mail-ayisrj@yahoo.in/ayisrj2011@gmail.com